तुलसी एवं युग सन्दर्भ

–नितेश उपाध्याय एवं डॉ. महेन्द्र कुमार उपाध्याय*
शोधार्थी : भारतीय भाषा केन्द्र,
जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
*एसोसिएट प्रोफेसर : इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग,
ज.रा. दि. वि., चित्रकूट, उ.प्र.

सारांश

तुलसीदास जी का समस्त साहित्यिक चिंतन अपने समय और समाज का जीवंत दस्तावेज है। उन्होंने अपने चिंतन के माध्यम से मध्यकालीन परिस्थितियों को उकेरा है साथ ही जनमानस के बीच समन्वय का मार्ग प्रस्तुत किया। संसार को जानने की बात लेकर तुलसीदास कविता में प्रवृत्त होते हैं। इससे आगे बढ़कर एक आम मनुष्य की बात करते हैं, और इसे आदर्श मनुष्य तक पहुँचाते हैं।

मुख्य शब्द–एकेश्वरवाद, एकात्मवाद, समन्वयवाद

तुलसीदास के युग संदर्भ को समझने से पहले हमें यह समझना होगा कि युग संदर्भ क्या है? युग संदर्भ का शाब्दिक अर्थ देखें तो यह बात स्पष्ट हो जाती है। युग का शाब्दिक अर्थ तो समय होता है, और संदर्भ का अर्थ है परिस्थितियाँ। अर्थात् किसी काल विशेष में जो कुछ हो रहा है वही उसका युग संदर्भ है। यहाँ होने का तात्पर्य हर परिप्रेक्ष्य से है। सामाजिक परिस्थिति कैसी है, राजनीतिक स्थिति क्या है, संस्कृति से संबंधित क्या कुछ चल रहा है। कहने का अर्थ है कि संदर्भ एक व्यापक अर्थ वाला शब्द है जिसमें सूक्ष्म और दीर्घ सारी बातें शामिल हैं। उदाहरण के तौर पर अभी कोरोना का प्रकोप देश में व्याप्त है, यह आज का युग संदर्भ है। इस प्रकोप के चलते लाखों श्रमिक घर लौटने को विवश हैं, यह भी आज का युग संदर्भ ही है। देश में लॉकडाउन है, अभावग्रस्त लोग खाने के लिए हलकान हो रहे हैं। पूरा विश्व इस वायरस के प्रकोप के चलते परेशान है और ईश्वर की ओर बढ़ रहा है, यह आज का युग संदर्भ है। देश का युवा आज पबजी और टिक टॉक में व्यस्त हैं, यह भी आज का युग संदर्भ ही है। कहने का अर्थ यह है कि बात चाहे छोटी हो या बड़ी लेकिन इस समय में अगर वह घटित हो रही है तो वह आज का युग संदर्भ ही है। ऐसे ही हर युग का अपना एक युग संदर्भ होता है। अब यहाँ प्रश्न उठता है कि साहित्य में युग संदर्भ कैसे परिलक्षित होता है। इस प्रश्न का उत्तर ढूँढ़ने से पहले यह विचार करना आवश्यक है कि साहित्य क्या है, और इसमें युग संदर्भ की उपस्थिति कैसे परिलक्षित होती है। इसका उत्तर बड़ी सरलता से देते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कहा था कि साहित्य जनता की चित्तवृत्तियों का संचित प्रतिबिम्ब है। अर्थात् साहित्य पर तत्कालीन समाज का प्रभाव निश्चित रूप से पड़ता है। सूक्ष्मता से देखें तो समाज और साहित्य एक ही वृक्ष की दो शाखाएँ हैं। इसलिए सामाजिक प्रवृत्ति के अनुसार साहित्यिक प्रवृत्तियों में बदलाव स्वाभाविक है। उदाहरण के रूप में आदिकाल के रासो ग्रन्थों पर ही विचार करें। राजाओं की प्रशंसा में उनके शौर्य गान में ये रचनाएँ लिखी जाती थी। लेकिन इस्लामी आक्रमण के साथ इनका चलन क्यों समाप्त हुआ। इसका उत्तर है कि विदेशियों के समक्ष अपने राजाओं की

प्रशंसा करने की स्थिति समाप्त हो गई। जब मुसलमान राजाओं का शासन देश में व्याप्त होने लगा, तब किसी भारतीय राजा की वीरता या उसके शौर्य का क्या मोल रह जाता है। अर्थात् शौर्य वर्णन का समय एक तरह से साहित्य से दूर हो गया। लोग ईश्वर की ओर प्रवृत्त होते गए। ऐसे में भक्तिपूर्ण रचनाएँ चलन में आई। एक बड़ा सटीक उदाहरण देख कर हम इस बात को और अधिक स्पष्टता के साथ समझ सकते हैं कि साहित्य में खूब सुन्दर कैसे उपस्थित रहता है। छायावाद के प्रमुख स्तम्भों में से एक रहे सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' का लेखन काल काफी लम्बा रहा। सामाजिक परिस्थितियों ने उनके साहित्य पर कैसे प्रभाव डाला, इसका अवलोकन करते हैं। 1916 के आसपास उन्होंने अपनी कविता 'जूही की कली' का सृजन किया। नायिका के सौन्दर्य का अद्भुत चित्रण उस कविता में किया गया है। लेकिन वही निराला 1936 के आसपास जब प्रगतिवाद का दौर प्रारम्भ हो रहा है तब एक कविता लिखते हैं, 'वह तोड़ती पत्थर।' दोनों कविताओं, उनके नायिकाओं का चित्रण, परिस्थितियों के अन्तर पर जब हम ध्यान देते हैं तो पाते हैं कि सामाजिक परिस्थितियों का साहित्य पर कितना गहरा प्रभाव पड़ता है। युग संदर्भ के कारण कविता की अन्तर्वस्तु और शिल्प दोनों प्रभावित होते हैं। जैसे आजकल मानवाधिकारों की बात हो रही है तो बहुत सारी रचनाओं में इससे जुड़े विमर्श दिखाई देते हैं। कविता का स्वरूप बदल गया है, मुक्त छन्द वाली कविताएँ लिखी जाने लगी हैं। आत्मकथाओं का दौर चल पड़ा है। तुलसीदास के समय परिस्थितियाँ अलग थी। विदेशी आक्रान्ताओं के आक्रमण और उनका प्रभाव इस देश में व्याप्त हो जाने के पश्चात् भारतीय समाज निराशा के दौर से गुजर रहा था। भारतीयता के प्राचीन शौर्य को आमजन तक पहुँचाने वाली रचनाएँ अब नहीं लिखी जा रही थी, इस निराशा के वातावरण में जनता का ईश्वर की ओर झुका स्वाभाविक था। 'हारे को हरिनाम' वाली स्थिति थी। इसी परिस्थिति में भक्ति काल का प्रादुर्भाव हुआ। दक्षिण भारत से प्रारंभ हुई भक्ति की परंपरा को रामानंदाचार्य और वल्लभाचार्य ने उत्तर भारत में लाया और जिस परम्परा की शुरुआत की, कबीरदास और सूरदास सरीखे संतों ने उसे आमजन तक पहुँचाने का प्रयास किया। हालांकि भक्तों के दो वर्ग तब चलन में आए। एक तो प्राचीन भारतीय परंपरा के अनुसार भक्ति करने वाला वर्ग और दूसरा वर्ग ऐसा था जो कहने को तो निर्गुण भक्ति को महत्त्व देता था, भारतीय मूल भावना से दूर था और इस्लामिक एकेश्वरवाद की ज्यादा समीप। दूसरे शब्दों में कहें तो इन दूसरे प्रकार के भक्तों द्वारा की जाने वाली भक्ति और उनके साहित्य न केवल इस्लाम के प्रचार–प्रसार की जमीन तैयार करने में सहयोगी बन रहे थे, अपितु उसे खाद–पानी देने का काम भी कर रहे थे। वस्तुतः निर्गुण धारा या ज्ञानमार्गी कवियों ने भारतीय प्राचीन संस्कृति को छोड़कर एक नई राह समाज को दिखाई, जो मूलतः भारतीयता के अनुकूल कम और प्रतिकूल अधिक थी। आम जनमानस के लिए ऐसी भक्ति कठिन थी। तत्कालीन परिस्थितियों पर गौर करें तो भारतीय समाज विदेशी आक्रान्ताओं के अत्याचार से बुरी तरह त्रस्त था और इस परिस्थिति में ज्ञान और ध्यान की बात भला कोई त्रस्त समाज कैसे कर सकता है। उस समाज को तो आराध्य के रूप में एक ऐसे पात्र की आवश्यकता थी जिन्हें वे अपने जैसा समझ सकें, जिसे स्मरण करके ऐसा लगे कि वह अपने बीच का है। अत्याचार से प्रताड़ित लोगों के बीच ईश्वर को निराकार और निर्गुण बता देना तो और प्रतिकूल स्थिति थी। लोगों को उस नायक की आवश्यकता थी जो उनके साथ प्रत्येक स्थिति में खड़ा दिखाई दे। हमारे दुःख से दुःखी हो, और हमारे सुख से सुखी दिखाई दे। तुलसीदास ने जनता के इस मर्म

को समझा और श्री राम की प्रतिष्ठा मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में की। अपने काव्य के माध्यम से उन्होंने भारतीय समाज की खाई को पाटने का काम किया। सबसे अधिक प्रहार उन्होंने वैदिक विचारधारा के विरुद्ध अब्राहिमक एकेश्वरवाद पर किया क्योंकि इस्लाम के प्रसार में यह एकेश्वरवाद मुख्य भूमिका निभा रहा था। लोग इसलिए इसकी ओर आकृष्ट हो रहे थे, क्योंकि समाज में निराशा का वातावरण व्याप्त था, अलगाव का वातावरण व्याप्त था, कोई शोषक था और कोई शोषित, कोई बड़ा था तो कोई छोटा, किसी को अपने ब्राह्मण होने का गर्व था तो कोई शूद्र होने पर हीन भावना से ग्रसित था, कोई ज्ञानी था तो कोई अज्ञानी। इन सब को एक धरातल पर लाना बड़ा आवश्यक था। देश में और भी कई विवाद जैसे शैव और वैष्णव, ज्ञान और भक्ति आदि चीजें चल रही थी। तुलसीदास ने इन चीजों का सूक्ष्म अवलोकन किया और इन भेदों को मिटाने के लिए उन्होंने समन्वय का जो अद्‌भुत उदाहरण प्रस्तुत किया वह अन्यत्र कहीं नहीं मिलता। श्रीरामचरितमानस ने न सिर्फ भारतीय जनमानस का नैराश्य निवारण किया बल्कि शक्ति का संचार किया, जिससे एक बार फिर भारतीयों का मनोबल उठ खड़ा हुआ। एक लोक कवि जो रचनाएँ करता है, उसमें कुछ विशेष पहलुओं को ही ध्यान में नहीं रखता, बल्कि प्रत्येक पहलू का ध्यान रखता है, और तब अपनी बात करने का प्रयास करता है। इस आधार पर गोस्वामी जी सच्चे अर्थों में लोक कवि थे। उनकी दृष्टि हर ओर थी। वस्तुतः किसी कवि की कविताओं में युगीन संदर्भ दो स्तर पर पाए जाते हैं। पहला तो उस कविता की विषय वस्तु या उसकी अन्तर्वस्तु और दूसरा उसका बाह्य स्वरूप या कविता के शिल्प के रूप में। तुलसी की कविता में भी यह निश्चित रूप से पाए जाते हैं।

कवि तुलसीदास की कविता की अन्तर्वस्तु में युगीन संदर्भ प्रत्येक जगह दृष्टिगोचर होता है। संसार को जानने की बात लेकर तुलसीदास कविता में प्रवृत्त होते हैं। इससे आगे बढ़कर एक आम मनुष्य की बात करते हैं, और आदर्श मनुष्य तक पहुँचाते हैं। कविता के माध्यम से ही तुलसी इस आदर्श मनुष्य को देवत्व की प्रतिष्ठा दिलाते हैं। वे जब इस लिहाज से समय और समाज को देख रहे हैं तो उनके समय और समाज में कुछ चुनौतियाँ हैं जो उनके काव्य में युगीन संदर्भ के रूप में सामने आते हैं। पहला युगीन संदर्भ या उसे संपूर्ण भक्तिकाल का युगीन संदर्भ कहें तो वो यह है कि हमारा धर्म, हमारी संस्कृति, हमारी व्यवस्थाएँ सब टूटने के कगार पर है। तुलसीदास रामभक्ति धारा के सबसे बड़े कवि हैं। वे देख रहे हैं एक ओर इस्लाम तेजी से पांव पसार रहा है, और शासन में बैठा अकबर चाहता है कि तुलसीदास जैसे अनेकों संत उनकी दासता स्वीकार करें। इसके लिए वह हर संभव प्रयत्न करता है, तुलसीदास को मनसबदारी देने की बात करता है। लेकिन तुलसी अपनी कविता से उत्तर देते हैं–

हम चाकर रघुवीर के, पटौं लिखो दरबार।
तुलसी अब का होवेंगे नर के मनसबदार।।

चूँकि सत्ता विदेशी आक्रांताओं के हाथ में है। वे हर तरह से भारत की मूल संस्कृति पर चोट करना चाहते हैं, तलवार के बल पर नहीं, बल्कि लालच देकर या अपनी उदारता दिखा कर। सुलह–ए–कुल की नीति के तहत धर्माचार्यों के बीच वाद–विवाद की परंपरा शुरू हो चुकी है, और सत्ता में बैठे लोग धार्मिक प्रधान बनकर उन वाद–विवाद में हस्तक्षेप करते हैं। प्यार से ही सही लेकिन इस्लाम की श्रेष्ठता सब पर साबित करते हैं। जन कल्याण की योजनाएँ चल रही हैं, लेकिन इन सारे कामों का एक उद्‌देश्य है कि इस्लाम का फैलाव तेजी से हो। इस बात

को तुलसीदास समझते हैं। मत परिवर्तन से उन्हें कोई विशेष परेशानी नहीं हैं, लेकिन यह समझना मुश्किल नहीं है कि कई पीढ़ियों से जो सनातन धर्मावलंबी रहा है उसके मन में कितनी घृणा भरी गई कि उसने दूसरे धर्म को अपना लिया। एक दृष्टि से उसने सनातन को छोड़ा ही नहीं, बल्कि उसका दुश्मन भी हो गया। तुलसीदास इस बात से चिंतित हैं कि यह घृणा समाज को स्वस्थ नहीं रहने देगी। वह सोचते हैं कि इस समाज को कैसे बचाया जाए। इधर कबीरदास एकात्मवाद की प्रतिष्ठा कर चुके हैं। वे निर्गुणवाद की बात कर चुके हैं। लेकिन यह बात इस भारतीय मिट्टी के अनुकूल नहीं है, इसके लिए यहाँ रचे बसे तत्त्वों के भीतर ही इसकी दवा खोजने की आवश्यकता है। इस प्रकार तुलसी की चिंता यहाँ से शुरू होती है। इस चिंता में वे सोचते हैं कि क्यों हमारा समाज टूट रहा है। वह पाते हैं की मत–मतान्तर इसके मूल में है। उन्हें यह पता है कि जातिभेद भले भारत में हो, लेकिन समन्वय स्थापित करके चलने की कला यहाँ समाज में है। किन्तु मत–मतान्तर यहाँ के समाज के लिए घातक है। वे जानते हैं कि जाति व वर्ण विभेद को यह समाज सहन कर लेगा। लेकिन मत–मतान्तर यहाँ की मूल भावना को तहस–नहस करेगा। तुलसीदास वर्ण व्यवस्था के विरोधी नहीं है, उनका विश्वास है कि यह समाज के लिए अच्छी व्यवस्था है। समाज इस व्यवस्था पर चलता रहा है, और व्यवस्थाएँ सृदृढ़ रही हैं। तुलसी मानते हैं कि राजा अगर ठीक हो, केन्द्रीय सत्ता में बैठा व्यक्ति राजा रामचन्द्र की तरह हो जाए, तो फिर वर्ण व्यवस्था में कोई दिक्कत नहीं। लेकिन विभिन्न मत–मतान्तर होंगे तो समाज में वैमनस्यता बढ़ेगी, विवाद होंगे जिससे लोग तीसरे विकल्प की ओर अग्रसर होंगे। दो मत यानी सगुण और निर्गुण जब लड़ेंगे तो तीसरा यानी इस्लाम का हस्तक्षेप उसमें अवश्य होगा, जो उस समय सत्ता में है। तलवार की शक्ति तो है ही, और इसके अतिरिक्त सूफियों ने जन–जन तक अपनी पैठ बनाकर इस्लाम के पक्ष में माहौल बना दिया है। इस परिस्थिति में इस समाज को पथच्युत होने से बचाने के लिए तुलसी चिंतित हैं, वह व्यक्ति के मूल पर जाते हैं और पूरे भारतीय समाज को ही नहीं बल्कि विश्व को एकसूत्र में बांधते हैं।

'जड़ चेतन गुण दोष मय, विश्व कीन्ह करतार।' तुलसीदास ने समाज को, मानव मात्र को एक कर दिया अपने काव्य के माध्यम से और आगे समन्वय का रास्ता निकालते हैं। इसलिए तुलसी हिन्दी साहित्य के सबसे बड़े समन्वयवादी कवि हैं। तुलसी के पूर्व कबीर ने भी समाज जागरण का काम किया, लेकिन उनकी बातों में समन्वय का अभाव था। वह कहते थे–

''तेरा मेरा मनुवा कैसे एक होई रे,
तू कहता कागज की लेखी
मैं कहता आंखन की देखी।
मैं कहता सुलझावन हारी,
तू रखता उलझोई रे।''

कबीर कहते हैं कि सगुण और निर्गुण तो एक हो ही नहीं सकते, लेकिन तुलसी मानते हैं कि यदि भारतीय समाज सगुण और निर्गुण के बीच फंसा तो फिर परिस्थितियाँ प्रतिकूल हो जायेंगी इसलिए वे समन्वय की बात करते हैं और कहते हैं–

''सगुनहिं अगुनहिं नहीं कछु भेदा,
उभय हरहीं भव संभव खेदा।''

दोनों रास्ते एक ही है, लक्ष्य भी दोनों का एक ही है, फिर दोनों में विवाद कैसा। तुलसी ने गहराई से देखा कि यह देश किन–किन स्तरों पर बंटा हुआ है। जाति में भेद चरम पर था उस समय। इसके लिए तुलसीदास ने वर्ण व्यवस्था की बात की। तुलसीदास के पूरे काव्य में जाति व्यवस्था का पक्ष कहीं नहीं लिया गया। हाँ, वे वर्ण व्यवस्था के बड़े पक्षधर हैं। कलिकाल में उनका ब्राह्मणों को भला बुरा कहना इस बात का प्रमाण है कि जाति व्यवस्था को वे उचित नहीं मानते।

''द्विज श्रुति बेचक भूप प्रजासन, कोऊ नहीं मान निगम अनुशासन

ब्राह्मणों ने वेद को आय का जरिया बना लिया है और राजाओं ने प्रजा को अपना भोजन समझ लिया है। तुलसीदास राजा का गुण बताते हैं और कहते हैं–

''मुखिया मुख सो चाहिए, खान पान को एक
पाले पोसे सकल अंग, तुलसी सहित विवेक''

भारतीय समाज से कर लेने में तत्कालीन सत्ता दया नहीं दिखाती थी और किसानों से जबरन कर वसूली की जाती थी। तुलसीदास इससे चिंतित हैं। जनता को कैसे सुविधा दी जाए और उनसे कर कैसे लिया जाए इस पर लिखते हैं कि–

''बरसत हर्षत लोग सब, करषत लखै न कोए।
तुलसी प्रजा सुभाग ते भूप भानू सम होए।।''

तुलसी के राजा श्रीराम भानूकुल भूषण हैं, और उन के माध्यम से तुलसी अपनी बात कहते हैं कि सूर्य के समान राजा हो जो कर ले तो ऐसे ले किसी को पता भी न चले और जब बारिश की बौछार हो तो प्रजा हर्षित हो जाए।

तुलसीदास इस बात को समझते हैं कि समाज में जो विभेद है, उसकी जड़ में निर्गुणमार्गी संत हैं। इसलिए उन्होंने अपने पूरे काव्य में ऐसे संतों पर खूब प्रहार किया है। ऐसे लोगों के संन्यासी बनने के पीछे का कारण बताते हुए वे लिखते हैं कि–

''नारी मुई गृह संपति नासी, मूड़ मुड़ाए होए संन्यासी''

इतना ही नहीं तुलसी तत्कालीन समाज को भी ऐसे लोगों से बचने की सलाह देते हैं, और उनके द्वारा समाज में जो बात फैलाई गई है उन्हें सृष्टि के अन्त के बारे में सब कुछ पता है, इससे जनता को आगाह करते हुए तुलसी कहते हैं कि ऐसा निर्गुणियों के चक्कर में न फंसे, वे महाझूठे हैं। चूँकि वे समझते हैं कि भारतीय समाज का नैराश्य निवारण इस ज्ञान और ध्यान के माध्यम से नहीं होगा। वे राजा राम की बरतरी सब पर साबित करते हैं–

''झूठो है, झूठो है, झूठो सदा जग संत कहंत जे अन्त लहा है।
ताको सहै सठ संकट कोटिक, काढ़त दंत, करंत हहा है।
जानपनीको गुमान बड़ो, तुलसी के विचार गँवार महा है।
जानकीजीवनु जान न जान्यो, तौ जान कहावत जान्यो कहा है।''

कबीरदास सरीखे अन्य निर्गुण संतों ने वैदिक धारा से इतर एक अलग ही वातावरण बना दिया था और विदेशी विचारों के लिए मार्ग खोल दिए थे, इसलिए तुलसीदास उनके विरूद्ध लिखते हैं कि–

''साखी सबदी दोहरा, कई किहनी उपखान।,

भगति निरुपहि भगत कलि निंदहि वेद पुरान।।''

निर्गुण को तुलसीदास गलत नहीं मानते, लेकिन तत्कालीन निर्गुणवाद वेदोक्त निर्गुणवाद से बिल्कुल अलग था, इसलिए निर्गुण संतों के ऊपर तुलसीदास की वक्र दृष्टि पूरे काव्य में दिखाई देती है, और बड़े साहित्यिक अंदाज में उन्होंने इन संतों को लताड़ा भी है। यहाँ समझने वाली बात है कि तुलसीदास की नजर में सबसे पहली खाई निर्गुण और सगुण के बीच में है। जब वे स्वयं कह रहे हैं कि सगुण और निर्गुण में कोई भेद नहीं है तो फिर निर्गुणवाद की भर्त्सना क्यों? इसके मूल में यही कारण है कि निर्गुणियों के द्वारा प्रचारित एकेश्वरवाद वैदिक नहीं है, बल्कि कहीं न कहीं उसका विरोधी है। क्योंकि कबीर जुलाहा हैं। वे उस स्थिति में हैं जो निम्न वर्ण के कवियों का प्रतिनिधित्व करते हैं। एकेश्वरवाद की बात जो कबीर कर रहे वही तुलसी भी कर रहे हैं लेकिन वेदोक्त एकेश्वरवाद से अवतारवाद का मार्ग खुल जाता है, कबीर का एकेश्वरवाद इस्लाम से प्रभावित है। इसलिए तुलसी इसका विरोध कर रहे हैं। यह तुलसी का एक बहुत बड़ा युग संदर्भ है।

तुलसीदास देख रहे हैं कि भारत में सिर्फ निर्गुण और सगुण के बीच ही भेद नहीं है। भारतीय समाज में अन्य भी कई मामले हैं जिन पर लोगों में विवाद है। उन्होंने देखा कि शैव और वैष्णव के नाम पर लोग एक–दूसरे से लड़ ही नहीं रहे, बल्कि मरने–मारने पर उतारू हैं। पूर्व में चोल राजाओं के बढ़े हुए प्रभाव के कारण दक्षिण भारत में शैव मन्दिरों का आधिक्य हो गया था, लेकिन इसके उलट वैष्णवों पर अत्याचार भी प्रारंभ हुए थे। स्थिति ऐसी थी कि विष्णु भक्तों को समुद्र में डाल दिया जाता था। यह स्थिति तुलसीदास के काल तक कहीं न कहीं मौजूद थी। इसलिए तुलसी ने इस पर भी गंभीर चिंतन किया और समन्वय की चाबी से इस खाई को भी भरने का प्रयास किया। वह देखते हैं कि मध्य भारत में शाक्त परंपरा वाले लोग हैं और उत्तर भारत में जो परंपराएँ हैं दक्षिण भारत तक नहीं पहुँच रही और दक्षिण भारत की परम्परा दक्षिण भारत तक ही सीमित है। दोनों ओर के लोग अपने में ही खोए हैं। बातचीत के सारे रास्ते बंद हैं। इस बात को तुलसी समझते हैं और समाज को एक करने का मार्ग खोजते हैं। राम से शिव की प्रतिष्ठा करा कर इस विवाद का पटाक्षेप करने का प्रयास करते हैं। राम के मुँह से शिव की महिमा का बखान करवाते हुए तुलसी कहते हैं–

''शिव द्रोही मम दास कहावा, सो नर सपनेहु मोहि न पावा।
शंकर विमुख भगति चाहे मोरी, सो नारकी मूढ़ मति थोड़ी।।''

तुलसी वैष्णव के द्वारा शैव मत की प्रतिष्ठा कराते हैं। वे देख रहे हैं कि परंपरा में जो दूरियाँ हैं उसी कारण समाज एक नहीं हो पा रहा। उत्तर भारत संकट में है, लेकिन दक्षिण भारत मौत के लिए आगे क्यों नहीं आता? जब इस प्रश्न पर वे विचार करते हैं तो पाते हैं कि कहीं न कहीं इसके मूल में शैव और वैष्णव विवाद ही है। इसको ध्यान में रखकर वे राम के द्वारा शंकर भगवान की आराधना करवाते हैं। रामेश्वरम की स्थापना करके एक अद्भुत समन्वय का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। इस प्रकार शिव और राम को मिलाकर वे भारतीय समाज के बीच समन्वय स्थापित करने का अद्भुत प्रयास करते हैं। वस्तुतः तुलसी हर उस परिस्थिति पर गौर करते हैं जो भारतीयों के बीच वैमनस्यता के वटवृक्ष के रूप में खड़ा है। अपने साहित्य के माध्यम से वैमनस्यता के मूल को काटने का प्रयास करते हैं। तुलसी की दृष्टि वर्गीय ढाँचे पर भी है। राजा और प्रजा दो वर्ग है, जिसके चलते समाज में भेद व्याप्त है। इसलिए तुलसी इस

बात को समझ कर श्री राम को एक आदर्श राजा के रूप में स्थापित करते हैं जो सिर्फ राजा नहीं बल्कि संपूर्ण समाज का नायक है। अर्थात् राज शोषक न होकर प्रजा का पालक है। तुलसीदास कलिकाल वर्णन में कहते हैं कि ''राज समाज बड़ो ही छली है।'' अर्थात् वह समझ रहे हैं कि तत्कालीन राजा शोषक का पर्याय है और जनता शोषित है। वस्तुतः पश्चिमी विचारक कार्ल मार्क्स ने वर्गों की जो अवधारणा दी, वही बात तुलसी मार्क्स से सदियों पहले कर चुके थे। उन्होंने राजा राम की प्रतिष्ठा एक ऐसे राजा के रूप में की जिसके राज्य में जनता भी सहभागी है। राजा और प्रजा के बीच ऐसा प्रेम है जो एक–दूसरे से अलग होने के बाद काफी दुःख देता है। जब राम अयोध्या से वन को चलते हैं तब का वर्णन करते हुए तुलसी कहते हैं–

''राम चलत अति भयउ विषादु, सुनि न जाई पुर आरत नादू''

राम जी राजा हैं, लेकिन प्रजा के कितने समीप हैं कि प्रजा उनके साथ हो जाती है, और राम के साथ पूरी अयोध्या चल पड़ती है।

''चलत रामु लखि अवध अनाथा, विकल लोग सब लागे साथा।
कृपासिंधु बहुबिधि समझावहिं, फिरहिं प्रेम बस पुनि फिर आवहिं।।''

इस तरह तुलसी की नजर ज्ञान के आधार पर समाज में व्याप्त दूरियों पर गई। वस्तुतः उस समय समाज ज्ञान के आधार पर भी दो भागों में विभक्त था, पहला वर्ग ज्ञान की बात करता था और दूसरा स्वयं को खाली हाथ पाता था। तुलसी ने इस दूसरे पक्ष को भक्ति का मार्ग सुझाया। इतना ही नहीं ज्ञान और भक्ति में भक्ति की श्रेष्ठता प्रमाणित करते हुए गोस्वामी जी कहते हैं कि ज्ञान हो या न हो किन्तु राम की भक्ति ऐसी है जिससे मनुष्य भवसागर के पार हो जाए। नाम जम की महिमा बताते हुए तुलसी कहते हैं, ''कलियुग केवल नाम अधारा, सुमिरि सुमिरि नर उतरहिं पारा।'' तुलसी का लक्ष्य भारतीय समाज के निराशा को दूर करके उसके भीतर उत्साह का भाव भरना था, भक्ति तत्त्व की प्रतिष्ठा करके तुलसी ने यह काम बखूबी किया।

''राम भगति चिंतामणि सुन्दर, बसई गरुण जाके उर अन्तर''। तुलसी कहते हैं कि भक्ति करने वाले को किसी भी विपत्ति से डर नहीं लगता, न किसी क्षति का भय होता है। ''अब मैं कुशल मिटै भय सारे, देखि राम पद कमल तुम्हारे''। गोस्वामी जी ने भक्ति की बरतरी ज्ञान पर साबित की और जो समाज अपने को ज्ञानहीन समझ रहा था, उसे प्रभु राम के मुख से ही संदेश दिया, ''कह रघुपति सुनी भामिनी बाता, मानो एक भगति कर नाता''। संपूर्ण समाज को भक्ति का संदेश देकर गोस्वामी जी ने नैराश्य से उबारने का काम किया। उन्होंने निराश समाज में यह भाव भरा कि अगर कोई दुःख है तो उसे परेशान होने के बदले उसका सामना किया जाए और सामना करने की शक्ति भक्ति से ही मिलेगी। विनय पत्रिका में वे लिखते हैं–

''यह बिनती रघुबीर गुसांई,
और आस बिस्वास भरोसो, हरो जीव जड़ताई,
चहौं न कुमति सुगति संपति कछु, रिधि सिधि बिपुल बड़ाई,
हेतु रहित अनुराग राम पद, बढ़ै अनुदिन अधिकाई,
कुटील करम लै जाहिं मोहिं जहं जहं अपनी बरिआई,
तहं तहं जनि छिन छोह छांडियो कमठ–अंड की नाईं।

जब यह धरा विदेशियों के अत्याचार से पीड़ित थी तब अपनी आस्था पर कैसे दृढ़ रहा जाए यह गोस्वामी जी ने अपनी रचनाओं से समाज को समझाया। सम्पूर्ण निष्ठा से राम को भजने की बात की। जो दोष दुर्गुणों से युक्त होकर पूजा की बदौलत राम भक्त होने का दावा करते हैं उन पर तुलसी ने कटाक्ष करते हुए कहा, ''बंचक भगत कहाइ राम के, किंकर कोह काम के।'' इसी भाव को विनय पत्रिका के माध्यम से भी व्यक्त करते हैं और ऐसे ढोंगियों को लताड़ते हुए कहते हैं, ''गोपद बुड़िबे जोग करम करौं, बातनि जलधि थहावों। अति लालची, काम–किंकर मन, मुख रावरो कहावों''। इस प्रकार भक्ति को सर्वश्रेष्ठ बताकर उन्होंने ज्ञान और भक्ति का अद्‌भुत समन्वय स्थापित किया। यह समन्वय तुलसी का उपदेश नहीं, बल्कि उनका युगीन संदर्भ है।

तुलसी अपने समय में घट रही घटनाओं से व्यथित हैं और रामचरितमानस के कलिकाल वर्णन में इन सारी चीजों को समेटते हैं। विनय पत्रिका और कवितावली में भी कलिकाल वर्णन का संदर्भ दिखाई देता है, जो वस्तुतः तुलसीदास का युग संदर्भ ही है। तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों के बारे में गोस्वामी जी लिखते हैं, ''भए लोग सब मोहबस लोभ ग्रसे सुभ कर्म''। तुलसीदास वर्ण व्यवस्था के बड़े समर्थक हैं और जाति व्यवस्था के घोर विरोधी। कलियुग अर्थात् तत्कालीन परिस्थितियों में वेद, ब्राह्मण, राजा आदि की जो स्थिति थी उस पर वे लिखते हैं, 'बरन धर्म नहिं आश्रम चारी। श्रुति बिरोध रत सब नर नारी। द्विज श्रुति बेचक भूप प्रजासन। कोउ नहिं मान निगम अनुसासन।''

वर्तमान परिस्थितियों में तुलसीदास पर उंगली उठाने वाले लोग उन्हें ब्राह्मणवादी कहते हैं लेकिन कलिकाल वर्णन में उन्होंने ब्राह्मणों को श्रुति बेचक कहकर यह बताया है कि वे ब्राह्मणवादी नहीं, बल्कि सत्य के प्रबल समर्थक हैं। गलत करने वाले चाहे कोई भी उनकी खबर लेने में तुलसी तनिक भी नहीं हिचकते। हमारे ग्रन्थों में उल्लिखित है कि महाजनो येन गतः सः पन्थाः। लेकिन तुलसीदास के समय परिस्थिति एकदम विपरीत है। कलिकाल वर्णन में वे लिखते हैं, ''मारग सोई जा कहुँ जोइ भावा। पंडित सोई जो गाल बजावा।। मिथ्यारंभ दंभ रत जोई। ता कहुँ संत कहइ सब कोई''। इस प्रकार कलिकाल में वर्णन उन्होंने समाज के हर पक्ष को गौर से देखा है, परिवार की स्थिति, समाज में नारी की स्थिति, पुरुषों की दृष्टि, संतों का चरित्र इन सारी चीजों के बारे में तुलसी ने गहनता से अध्ययन किया है और सारी चीजों का उल्लेख किया है। यह वर्णन उनका युग संदर्भ है। उन्होंने निराश समाज के भीतर एक नए उत्साह का संचार करते हुए इन परिस्थितियों से उबरने का मार्ग भी सुझाया है। तुलसीदास समाज को वह संदेश देने का प्रयत्न करते हैं जिससे समाज में जागृति उत्पन्न हो। वे लिखते हैं कि परिस्थितियाँ भले ही विषम हैं, लेकिन कलियुग में इनसे उबरना बड़ा सरल है, बिना अधिक परिश्रम के मनुष्य बंधन से मुक्त हो सकता है। रास्ता बड़ा आसान है। तुलसीदास नाम जपने का मार्ग यहाँ सुझाते हैं। वस्तुतः रास्ता सुझाने के पीछे उनका समन्वय का सिद्धान्त है, क्योंकि समाज में तत्कालीन परिस्थितियाँ प्रतिकूल है। हर स्तर पर समाज में भेद व्याप्त है, इस भेद को पाटने का सरल तरीका वे बताते हैं, ''कृतजुग त्रेता द्वारा पर पूजा मख अरु जोग। जो गति होइ सो कलि नाम ते पावहीं लोग।''

अर्थात् नाम जपने का रास्ता ही ईश्वर को प्राप्त करने के लिए पर्याप्त है। कलयुग में समझने वाली बात यह है कि नाम का जप तो कोई भी कर सकता है उसमें किसी प्रकार का

कोई बंधन नहीं है। जब तुलसी कहते हैं कि ''कलियुग केवल नाम अधारा, सुमिरि सुमिरि नर उतरहिं पारा।'' यहाँ 'नर' से सम्पूर्ण समाज को तुलसी समेट लेते हैं और भारतीय जनमानस में उत्साह का भाव अपनी रचनाओं में भरते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि तुलसीदास ने रामचरितमानस और अपनी तमाम रचनाओं में तत्कालीन युग संदर्भ को रखा और इनके माध्यम से भारतीयों को वह संजीवनी दी जिसने यहाँ के निराश जन–जीवन में फिर से एक नई चेतना लाने के लिए महत्त्वपूर्ण काम किया। तुलसीदास ने अपने साहित्य में हर समाजिक पहलू पर गौर किया और लोकमंगल का जो सिद्धान्त उन्होंने दिया उसका परिणाम यह हुआ कि उनकी रचनाएँ जन–जन के बीच व्याप्त हो गई और रामकथा का जो दौर शुरू हुआ वह आज तक चल रहा है और आगे भी चलता रहेगा।

सन्दर्भ सूची–

1. डॉ. राजपति दीक्षित, तुलसीदास और उनका युग, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, 1953
2. डॉ. त्रिभुवन सिंह, तुलसी : सन्दर्भ और समीक्षा, तुलसी शोध संस्थान, वाराणसी, 1976
3. रामचन्द्र तिवारी, तुलसीदास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009
4. विश्वनाथ त्रिपाठी, लोकवादी तुलसीदास, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011
5. रामचन्द्र शुक्ल, त्रिवेणी,विश्वविद्यालय प्रकाशन,वाराणसी, 2008